भारतीय शिक्षा के विकास में स्वामी दयानंद सरस्वती का योगदान

Bhartiya Shiksha Ke Vikas Mein Swami Dayanand Sarasvati Ka Yogdan

Ruchika Sharma

Research Scholar, Singhania University, Rajasthan India

----------♦----------

प्रस्तावना

शिक्षा मनुष्य की नैसर्गिक चेष्टा और उसकी विकासशील प्रवृत्ति है। मनुष्य आदिकाल से सीखता आ रहा है। जो कुछ मनुष्य ने सीखा, उसे शिक्षा का रूप दिया। शिक्षा मानव–समाज की संचित सीख है। वह उसे परम्परा और परिस्थिति के अनुसार ग्रहण करता है। शिक्षा कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो किसी पदार्थ या बीज के रूप में प्रदान की जाये। यह तो एक प्रकार की चेतना है, जिसे मनुष्य स्वंय प्राप्त करता है। शिक्षा एक गतिशील विषय है। शिक्षा धारा में एक स्वाभाविक प्रवाह होता है। यह चेतन रूप है जड़ नहीं। शिक्षा आज महत्वपूर्ण विषय बन गयी है। शिक्षा की एक सर्वमान्य परिभाषा दी गई है – ''सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस प्रक्रिया से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश सांसारिक होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।''

शिक्षा की परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने इस प्रकार दी हैं –

1. प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री स्ट्रेयर के अनुसार – ''शिक्षा वह है जो विद्वान के कार्यों में अंतर ला देती है। शिक्षा प्राप्त करने के कारण ही षिक्षित व्यक्ति का समाज में दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक आदर होता है। षिक्षित होने के कारण ही भारतियों ने सार विष्व में अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार किया।''

2. हरबर्ट स्पेंसर जर्मनी के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री के अनुसार, ''शिक्षा वह है जो बुद्धि के द्वारा बुरी प्रवृत्तियों को जीत लेती है, ''चरित्र संगठन' शिक्षा का रूप है।''

3. राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी की शिक्षा संबंधी परिभाषा–शिक्षा से मेरा तात्पर्य है–''शिशु एवं मानव के शरीर, मन एवं आत्मा में निहित सर्वश्रेष्ठ तत्वों का विकास।'' स्पष्ट रूप में – मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्म गुणों का बहुर्मुखी विकास।

4. बेकन के अनुसार – ''व्यक्ति को समाज के लिये उपयोगी बनाती है। इनका कहना है कि मनुष्य को समाज के योग्य बनाने के लिए ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, धर्मशास्त्र इत्यादि अन्य विषयों की भी आवश्यकता है।

अरस्तु ने मनुष्य में दो प्रवृत्तियाँ देखी, एक तीक्षण अथवा पाश्विक और दूसरे बौद्धिक तथा मानसिक। स्टाइन, इन्वोल्ट तथा दूसरे राजनीतिज्ञों ने इसका अनुकरण किया।

इस प्रकार शिक्षा की कोई एक परिभाषा देना सरल नहीं है। इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। जैसे – स्ट्रेचर, हरबर्ट स्पेंसर, बेकन, गाँधी ने शिक्षा को विभिन्न विचारों से विश्लेषित किया है।

शिक्षा का महत्व :

शिक्षा के अर्थ को समझने के बाद हमें शिक्षा के महत्व को भी समझना जरूरी हो जाता है। आज के युग में शिक्षा का महत्व इतना अधिक हो गया है कि हर क्षेत्र में इसने ख्याति प्रदान की है। व्यक्ति के व्यक्तिगत, सामाजिक विकास के लिये शिक्षा बहुत जरूरी है। शिक्षा बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण का ही नहीं, अपितु सम्मान और राष्ट्र के निर्माण का भी आधार स्तम्भ है। जो राष्ट्र शिक्षा में जितना पिछड़ा रहता है, वह सभ्यता में भी पीछे रहते हैं। विज्ञान के आविष्कारों का लाभ उसी राष्ट्र को मिलता है, जो सुशिक्षित है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता है कि उसके नागरिक शिक्षित है। इसका निराकरण शिक्षा के प्रसार द्वारा ही किया जा सकता है। शिक्षा प्रसार से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने जैसा ही व्यक्ति मानने लगता है। वह दूसरे के व्यक्तित्व का उतना आदर करना सीख लेता है, जितना कि दूसरे से वह अपना आदर कराना चाहता है। शिक्षा मनुष्य का चरित्र उदार बनाती है, जिससे वह समस्त

संसार के प्रति मैत्री–भावना स्थापित करने में समर्थ होता है। उसका हृदय विशाल हो जाता है तथा उसके लिये समस्त राष्ट्र परिवार जैसा ही दिखलाई देता है।

समाज का कोई भी वर्ग हो शिक्षा के महत्व से अछूता नहीं रह सकता है। शिक्षा के बिना कोई भी व्यक्ति सार्थक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। मनुष्य को तकनीकी व वैज्ञानिक शिक्षा के साथ–साथ साहित्य, संगीत कला आत्म–विकास आदि की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षा शास्त्रियों ने विज्ञान की शिक्षा के साथ–साथ मानविकी शास्त्री और कलाओं की शिक्षा को भी आवश्यक माना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा का हमारे जीवन में विशेष महत्व हैं, इसके बिना हम अपना विकास नहीं कर सकते। न ही प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

स्वामी दयानंद जी का जीवन परिचय :

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म काठियावाड़, गुजरात में हुआ। वहाँ पर मोखी नाम का छोटा सा राज्य था। उसी राज्य में टंकारा नामक नगर में सम्वत् 1881 विक्रमी (सन् 1824 ई$_0$) के भादो शुक्ला नवमी दिन गुरूवार को मूल नक्षत्र में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री कर्सन जी द्विवेदी था। इनके पिता शिव के उपासक थे। बचपन में दयानंद जी का नाम 'मूलजी' अथवा मूलशंकर था।

पाँच वर्ष की आय से ही मूल जी को देवनागरी की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। माता–पिता तथा परिवार के अन्य वृद्धजनों ने पारिवारिक शिक्षा प्रदान की। 8वें वर्ष में मूल जी का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और संध्यावादन की रीति इन्हें सर्वप्रथम इनके पिता जी ने सिखाई। कर्सन जी सामवादी थे, अतः आरम्भ में इन्होंने बालक मूलशंकर को रूद्री और फिर संहिता अध्ययन करवायी। 'मूलजी' को शिवोपासना की विधि भी सिखाई गयी। दसवें वर्ष की आयु में अर्थात् 1834 ई^0 में मूलजी मूर्ति पूजा करने लगे। 14 वर्ष की आयु में उन्होंने यजुर्वेद संहिता कण्ठस्थ कर ली और कुछ अन्य वेदों का पाठ भी पढ़ लिया। साथ ही व्याकरण की पुस्तकें भी उन्होंने पढ़ ली थी।

14 वर्ष की आयु में सन् 1894 ई^0 में उन्होंने शिवरात्रि का व्रत किया। काठियावाड़ में यह व्रत माघ बदी चतुर्दशी को होता है। मोखी में नगर के बाहर एक शिवालय था। शिवरात्रि की रात्रि को वहाँ पर मूल जी के माता–पिता, स्वंय मूल जी और अन्य बहुत से लोग पूजा में एकत्र हुए। रात्रि के प्रथम पहर में पूजन समाप्त हो गया। रात्रि जागरण भी करना था।

आधी रात के बाद लगभग सभी उँघने लगे। किन्तु व्रत के महात्म को भंग न होने देने के लिये बालक मूल जी अपनी आँखों में पानी के छींटे देकर आलस्य को दूर करते रहे और जागते रहे। जनकोलाहल नितान्त शान्त होने पर रात्रि में एक चूहा बिल से निकलकर पिण्डी के चारों ओर घूमने लगा और शिवजी पर चढ़ाई हुई सामग्री को खाने लगा, यह देखकर बालक मूल शंकर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, उनके मन में प्रश्न उठा यह वही महोदय है जिनके विषय में कथा में वर्णन आया है, जो त्रिशुलधारी है और डमरू बजाते हैं और पूरे कैलाश के स्वामी हैं। किन्तु यह मूर्ति तो एक छोटे से चूहे को हटाने का सामर्थ्य नहीं रखती।

मूल जी के जीवन में इस घटना ने काफी परिवर्तन ला दिया। उन्होंने व्रत व मूर्ति पूजा न करने का निश्चय किया। मूलजी पुनः एक पण्डित से निघण्टु, निरूक्त, पूर्व मीमांसा और कर्मकाण्ड की पुस्तकों का अध्ययन किया। वैसे 'सुतीक्ष्ण बुद्धि और अद्भुत स्मरण शक्ति के कारण मूलजी का अध्ययन कार्य चौहदवें वर्ष में पदार्पण करने से पहले ही व्याकरण और शब्द रूपवली का अभ्यास करके और समस्त यजुर्वेद और अन्य वेदों के भी थोड़े–थोड़े भाग को कण्ठस्थ करके एक प्रकार समाप्त हो ही गया था।''

शिवरात्रि की पूजा की घटना के दो वर्ष पश्चात् एक अन्य घटना जिसने बालक के सारे जीवन को बदल दिया। मूल जी से छोटे दो भाई और दो बहनें थीं। जब मूल जी 16 वर्ष के थे तो सन् 1996 ई$_0$ में उनकी चौदह वर्षीया बहन को विशूचिका हो गयी। वैद्यों ने उपचार किया किन्तु कोई लाभ न हुआ और वह बालिका 4 घंटों में परलोक सिधार गई। घर में रोना–पीटना शुरू हो गया। मूल जी ने पहली बार ही मृत्यु के कलेश को अपनी आँखों से देखा था। घर के सभी लोग रोने में व्यस्त थे, लेकिन मूलजी चिन्तन में व्यस्त थे। मृत्यु क्या है और इससे किस प्रकार रक्षा हो सकती है ? इन प्रश्नों ने बालक के मन को झकझोर दिया। ब्रह्मचारी मूलशंकर के मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये उतावला हो उठा।

20 वर्ष की आयु में मूल शंकर ने अपने पिता से आग्रह किया कि उन्हें काशी जाकर व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक पढ़ने की आज्ञा दे। ऐसा उन्होंने इसलिये किया कि उनके पिता और घर के सगे संबंधियों ने उनका विवाह करने का निश्चय किया था। मूल शंकर के मन में वैराग्य था और वह ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना चाहते थे, किन्तु उनके पिता ने काशी जाने की आज्ञा नहीं दी। उधर विवाह की तैयारियाँ हो रही थी और इधर बालक मूल जी का योगाभ्यास तीव्रतर होता जा रहा था। विवाह से बचने का और कोई उपाय न देखकर 21 वर्षीय मूल जी ने घर छोड़ने का निश्चय किया। ज्येष्ठ मास में एक दिन सायं काल वे घर से निकल पड़े, घर से वे टेढ़े मेढ़े रास्तों पर निकल पड़े ताकि उनके पिता उन्हें ढूँढ़ न सकें।

इधर – उधर भटकते हुए वे कार्तिकी मेले में सिद्धपुर पहुंचे, जहाँ पर अनेक योगियों से वे अमर होने का मार्ग पूछते रहे। यहीं पर उनके पिता उन्हें लेने के लिये आये और उन पर काफी क्रुद्ध हुए लेकिन बालक मूलजी काफी होशियारी से वहाँ से निकल पड़े।

नर्मदा के तट पर वह अनेक संन्यासियों के सम्पर्क में वे डेढ़ वर्ष तक रहे। इन्हीं दिनों चालोडर ग्राम के पास के वन में पूर्णानंद सरस्वती नामक एक दण्डी स्वामी आये। उन्हीं से मूलशंकर जी ने संन्यास की दीक्षा ली। स्वामी जी ने बड़ी हिचकिचाहट के साथ मूल जी को दीक्षित किया और उनका नाम दयानंद सरस्वती रखा। इस प्रकार 24 वर्ष की आयु में मूलशंकर जी स्वामी दयानंद जी बन गये।

स्वामी दयानंद जी की विद्या अध्ययन की पिपासा शान्त नहीं हुई थी और उन्होंने व्यासाश्रम में जाकर योगानंद नामक एक योगी से योगविद्या पढ़ी। इसके बाद वे चितौर गये और कृष्ण शास्त्री जी से व्याकरण का उन्होंने अध्ययन किया। आबू पर्वत पर राजयोगियों से योगाभ्यास सीखा और अनेक तत्वों पर वार्ता की। 14 नवम्बर 1860 ई$_0$ को वे मथुरा आये मथुरा में स्वामी जी की भेंट स्वामी विरजानंद से हुई। स्वामी दयानंद जी ने स्वरचित आत्मचरित में यों लिखा है –

''संवत् 1917 विक्रमी को मथुरा जी में एक सन्यासी सत्पुरूष मुझे गुरू मिले, उस समय उनकी आयु 81 वर्ष की थी, उनको वेद शास्त्र से लेकर आर्य ग्रन्थों तक में बड़ी रूचि थी। ये नेत्रांध थे। स्वामी जी जालंधर के निवास थे। इनकी आर्य ग्रन्थों में बड़ी भक्ति थी।''

स्वामी विराजानंद ने स्वामी दयानंद जी को जीवन के चरम उद्देश्य का ज्ञान दिया और अज्ञान तथा असत्य से युद्ध करने की प्रेरणा भी दी। पौराणिक हिन्दू धर्म के स्थान पर वैदिक धर्म के उपदेश के लिये उन्होंने स्वामी दयानंद को आज्ञा दी।

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् स्वामी दयानंद जी ने 15 वर्षों तक अनेक स्थानों का भ्रमण किया हरिद्वार के कुम्भ से लेकर कलकत्ते तक की यात्रा की। इस क्रम में स्वामी जी को पाँच वर्ष लगे। इन पाँच वर्षों में स्वामी जी ने संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया। उन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन किया और शास्त्रार्थ में अनेक विद्वानों को पराजित किया। कलकत्ते में स्वामी जी ब्रह्म समाज के कार्यकर्त्ताओं से मिले। इनमें मुख्य महर्षि देवेन्द्रनाथ और केशवसेन थे। केशवसेन जी से मिलना काफी लाभकारी रहा। केशवसेन जी ने स्वामी जी को संस्कृत के स्थान पर हिन्दी भाषा का प्रयोग करने की सलाह दी, स्वामी दयानंद ने उनकी यह सलाह मान ली।

सन् 1875 ई$_0$ में स्वामी ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। 1883 में 30 अक्टूबर को दीपावली के दिन रूग्णता के पश्चात् स्वामी दयानंद जी का अजमेर में देहावसान हो गया। कहा जाता है कि स्वामी जी को जोधपुर में विष दे दिया गया था। महर्षि के सुप्रसिद्ध जीवन–लेखक पंडित लेखराम जी लिखते हैं कि ''मैंने विवेचना की तो यह विदित हुआ कि काँच पीस कर दूध में मिलाकर दिया गया था।'' शव की परीक्षा नहीं हुई। इसलिए स्वामी जी की मृत्यु के संबंध में सन्देह बना रहा।

स्वामी दयानंद जी की मृत्यु के समाचार ने देशवासियों को बड़ा आघात दिया। 11 नवम्बर को सूरत से प्रकाशित 'गुजरात मित्र' (दैनिक पत्र) के अनुसार, ''स्वामी दयानंद जैसे ऐतिहासिक मनुष्य की मृत्यु से भारत को अपने प्राचीन काल के एक अतीव उच्च पद के धार्मिक रिफार्मर की हानि हुई।

स्वामी दयानंद वैदिक ईश्वर वाणी को पूरी–पूरी रीति से मानने वाला एडवोकेट था।

पंजाब टाइम्स रावलपिंडी ने सन् 1883 के अंक में लिखा था कि, ''स्वामी दयानंद वास्तव में एक सच्चा और पूरा देश हितेषी था और चाहे उसका इतना ही काम देश के कृतज्ञ होने के लिये बहुत है, परन्तु वह इससे भी कहीं बढ़कर था। इतनी बड़ी विद्वता और विवके शक्ति जो कि शंकराचार्य के अनन्तर दो–चार महात्माओं को ही प्राप्त हुई होगी, स्वामी जी में इस प्रकार की हिम्मत, बुद्धिमता और सहनशीलता के एकत्रित गुण थे कि जो ऐसे रहे–सहे समय में अतीव दुर्लभ है। वास्तव में स्वामी दयानंद जी की मृत्यु का शोक सारे हिन्दुस्तान में था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

पुस्तकें

1. उदय शंकर एण्ड सी रूल कुण्डु (सम्पादित) एज्यूकेशन इन हरियाणा, रिटरोस्पैक्ट।
2. छाबरा, जी$_0$ एस$_0$ सोशल एण्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ दा पंजाब (1849–1900) जालंधर 1962
3. जावेद, आर$_0$ सी$_0$ पंजाब का आर्य समाज, जालंधर, 1964
4. जुनेजा, एम$_0$ एम$_0$ हिस्ट्री ऑफ हिसार (1954–1947) हिसार
5. जोसन, के$_0$ डब्ल्यू$_0$, आर्य धर्म हिन्दू कोनशियस इन दा नाइनटीन सैन्चुरी (न्यू दिल्ली 1976)
6. दत्ता, के$_0$ के$_0$ शोंशल हिस्ट्री ऑफ माईन इण्डिया, (न्यू–दिल्ली 1976)
7. देसाई, ए$_0$ आर$_0$ भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (न्यू दिल्ली–1976)
8. नेहरू, जे$_0$ डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (कलकत्ता 1946)
9. पारिक राधेश्याम, कन्ट्रीब्यूशन ऑफ आर्य समाज इन दा मेकिंग ऑफ मार्डन इण्डिया, 1975–1975, दिल्ली 1973
10. पाण्डे, डी$_0$ जी$_0$ दा आर्य समाज एण्ड इण्डियन नैशनलिज्म (1875–1920) न्यू दिल्ली – 1972